▪ Impact Factor – 6.625 ▪ Special Issue - 214 (B)
▪ January 2020 ▪ ISSN – 2348-7143

INTERNATIONAL RESEARCH FELLOWS ASSOCIATION'S
RESEARCH JOURNEY
Multidisciplinary International E-Research Journal
PEER REFREED AND INDEXED JOURNAL

हिंदी साहित्य : विविध विमर्श

- कार्यकारी संपादक -
डॉ. जिजाबराव पाटील

- अतिथि संपादक -
डॉ. बी. एन. पाटील

- मुख्य संपादक -
डॉ. धनराज धनगर

Printed By : **PRASHANT PUBLICATIONS, JALGAON**

For Details Visit To : www.researchjourney.net

▪ Impact Factor – 6.625 ▪ Special Issue - 214 (B)
▪ January 2020 ▪ ISSN – 2348-7143

INTERNATIONAL RESEARCH FELLOWS ASSOCIATION'S

RESEARCH JOURNEY

Multidisciplinary International E-Research Journal

PEER REFREED AND INDEXED JOURNAL

For Details Visit To : www.researchjourney.net

SWATIDHAN PUBLICATIONS

Printed By :

PRASHANT PUBLICATIONS

Office : 3, Pratap Nagar, Shri Sant Dnyaneshwar Mandir Road,
Near Nutan Maratha College, Jalgaon- 425001.
Ph.: (0257) 2235520, 2232800. **Mob.:** 9665626717, 9421636460

www.prashantpublications.com | prashantpublication.jal@gmail.com

Price : ₹ 500/-

- साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श ४७
  प्रो. दीपक विनायकराव पवार
- समकालीन उपन्यास साहित्य में दलित समाज : एक अनुशीलन ५०
  प्रा. भाऊसाहेब नामदेव पाटील
- हिंदी उपन्यासों में किन्नर समाज ५२
  प्रा. राजेश मेरसिंग खर्डे
- भावना कुमारी की ग़ज़लों में नारी चिंतन ('चुप्पियों के बीच' ग़ज़ल संग्रह के विशेष संदर्भ में) ५४
  प्रा. सौ. स्वाती व्ही. शेलार
- वृद्ध जीवन का औपन्यासिक दस्तावेज – 'समय सरगम' ५६
  प्रा. शेख जाकीर एस.
- नासिरा शर्मा के कहानी साहित्य में स्त्री – विमर्श ५९
  प्रा. दिलीप पी. पाटील
- मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी जीवन की त्रासदी ६१
  डॉ. बालकवि लक्ष्मण सुरंजे
- अदम गोंडवी की ग़ज़लों में हाशिए का समाज ६४
  प्रा.विजय लोहार
- 'मैं पायल'... उपन्यास में निहित किन्नर विमर्श ६७
  डॉ. कैप्टन बाबासाहेब माने
- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी विमर्श ७०
  डॉ. रवींद्रकुमार शिरसाट
- हिंदी आत्मकथा साहित्य मे चित्रित नारी विमर्श ७३
  प्रा. कैलास काशिनाथ बच्छाव
- नारी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'बटोही' नाटक का अनुशीलन ७५
  डॉ. भगवान एन. जाधव
- हिंदी की आदिवासी कविता में नारीवाद (विशेष संदर्भ : निर्मला पुतुल की कविताएँ) ७८
  डॉ. प्रीति एस. सोनी
- ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानियों में चित्रित नारी विमर्श ८१
  प्रा. डॉ. प्रल्हाद विजयसिंग पावरा
- नारी मुक्ति का स्वर : 'छिन्नमस्ता' उपन्यास के संदर्भ में ८४
  डॉ. अमोल दंडवते
- राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त नारी विमर्श ८६
  प्रा. डॉ. पूनम त्रिवेदी
- भारतीय नारी स्वतंत्रता संबंधी महात्मा गांधी जी की विचारधारा ८९
  प्रा. मच्छिंद्र गुलाब ठाकरे
- भगवानदास मोरवाल की कहानियों में नारी चित्रण ९१
  प्रा. डिम्पल सुरेश पाटिल
- 'फुगाटी का जूता' में अभिव्यक्त विविध विमर्श की पराकाष्ठा ९३
  प्रा. डॉ. पिरू. आर. गवली
- कबूतरा जाती और समाज के संघर्ष की गाथा – अल्मा कबूतरी ९६
  डॉ.संगीता लोमटे
- स्त्री आत्माभिमान की अभिव्यक्ति – निष्कवच ९८
  डॉ. शिवाजी वैद्य
- हिंदी ग़ज़लों में व्यक्त सामाजिक विमर्श १००
  शाहिन जिवनखान पठाण

RESEARCH JOURNEY International Multidisciplinary E-Research Journal ISSN : 2348-7143
Impact Factor (SJIF) - 6.625 | *Special Issue 214 (B)* : हिंदी साहित्य : विविध विमर्श Jan. 2020

साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श

प्रो. दीपक विनायकराव पवार
दिगम्बरराव बिन्दू महाविद्यालय,
भोकर, जि. नांदेड़ (महाराष्ट्र)

विश्व पटल पर हमारा भारतवर्ष एक ऐसा राष्ट्र है, जहाँ विविधता में एकता के दर्शन होते हैं। विभिन्न विदेशी यथा शक, हूण, यवण, ईसाई, फ्रांसीसी डच आदि यहाँ विविध कारणों से आये और वास किया। इसके साथ ही, यहाँ के मूल निवासियों ने विदेशियों को न सिर्फ आत्मसात किया, बल्कि अपनी सांस्कृतिक विरासत को भी अक्षुण्ण बनाये रखा। इस राष्ट्र ने किसी अन्य राष्ट्र पर न तो अपना प्रभुत्व जमाया, न ही किसी की आजादी छीनी, बल्कि उदात्त मानवता का संदेश दिया। धर्म, संस्कृति, समुदाय, दर्शन का उद्‌गाता एवं सत्य, अहिंसा का अनुसरण करनेवाला भारतवर्ष सदियों से शांति का पक्षधर रहा है। 'सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सतु निरामया' के विराट मानवदर्शन का समर्थक भारतवर्ष अपने लोक कल्याणकारी अवधारणा के साथ अंत्योदय के विचार को आत्मसात करने की दृष्टि रखता है। इसी अंत्योदय की अवधारणा का सार्थक परिणाम है - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श अथवा 'आदिवासी विमर्श'।

धार्मिक-सांस्कृतिक विरासत भारतीयता की आत्मा है। यह विश्वबंधुत्व, विश्व संस्कृति का रक्षक है। यहाँ को सुरक्षा प्रदान कर रही है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ आदर्श समाज का संदेश देते रहे हैं। हमारे धर्मग्रंथ लोकसंस्कृति के पथ प्रदर्शक रहे हैं। 'धर्म' समाज व्यवस्था पर नियंत्रण रखनेवाली विचार प्रणाली है, तो संस्कृति हमारे संस्कारों को सजाती-सँवारती है। धर्म, संस्कृति और समाज का परस्पर संबंध तथा समन्वय रहता है और जन संस्कृति आमजन की सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। हिंदी के कतिपय उपन्यासों में भारतवर्ष के विभिन्न भू-भाग में निवास करने वाले आमजन एवं जनजातियों का रोचक चित्रण हुआ है। चूँकि आम जीवन एवं जनजातियों के जीवन से संबंधित उपन्यासों में स्थानीय रंगों का समावेश होता है, अत: वैसे उपन्यासों में जनसंस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रामदरश मिश्र का मानना है कि ''ऐसे चित्रण में निवासियों की मानसिकता का निर्माण होता है, उनपर संस्कार होते हैं। संपूर्ण आंतरिकता का गठन होता है।'' यह संस्कृति किसी समुदाय विशेष की विशिष्टता का कारण बनती है। किसी भी समाज का अध्ययन करना हो तो उसकी संस्कृति का अवलोकन करना अनिवार्य होता है। भारत के विभिन्न भागों में निवास करनेवाला आदिवासी समाज प्राकृतिक ज्ञान से युक्त पर शोषित, प्रगतिशील समाज से दूर प्रकति की गोद में पलनेवाला भारतमाता का आदिसपूत है। अपनी परम्परागत समाज का हर परिस्थिति में रक्षा करनेवाला यह समाज आज भी अपनी अलग पहचान बनाये रखने में सफल रहा है। आदिवासी जनजीवन एवं जनसंस्कृति वर्तमान में अध्ययन, अनुसंधान तथा समाजशास्त्रीय अध्ययन का ज्वलंत विषय बना हुआ है।

हिंदी साहित्य में बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के पूर्व आदिवासी जीवन को स्थान नहीं मिल पाया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'गोदान' और 'सद्‌गति' कहानी में आदिवासी समुदाय का संकेत भर किया है। बाद में फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने ''मैला आँचल'' प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास में आदिवासी जीवन को कुछ हद तक अधिक स्थान दिया है। इसके पश्चात् राजेन्द्र अवस्थी के 'सूरज किरण की छाँव, (१९५९ई०) उपन्यास के प्रकाशन से हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी जीवन के चित्रण की एक, क्रमिक परम्परा चलती है। राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल का फूल' (१९६० ई०), शानी का साँप और सीढ़ी (१९८१ई०), शिवराम कारंथ का 'पहाड़ी जीव' (१९८१ ई०), सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव का 'वनतरी' (१९८६ ई०), शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' (१९८९ई०), संजीव का 'धार' (१९९०ई०), गुरूदत्त का 'वनवासी' (१९९०ई०), रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' (१९९१ई०), संजीव का 'पाँव तले डूब' (१९९५ई०), चन्द्रमोहन प्रधान का 'एकलव्य' (१९९७ई०), महाश्वेता देवी का 'भूख' (१९९८ई०), संजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (२०००ई०) एवं महाश्वेता देवी का 'जंगल का दावेदार (२००८ई०) आदि उपन्यास आदिवासी जन जीवन को केन्द्र में रखकर लिखे गये महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। आदिवासी जनजीवन को आधार बनाकर लिखे गये इन उपन्यासों में बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आदिवासी विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार की एवं बुद्धिजीवियों को प्रकृति की गोद में जीवनयापन करनेवाले जनसमुदाय पर नये परिप्रेक्ष्य में सोचने पर विवश किया।

राजेन्द्र अवस्थी रचित १९६० ई० में प्रकाशित 'जंगल के फूल' उपनयास प्रथमत: आदिवासी जीवन गाथा पर आधारित पूर्ण उपन्यास हैं। इसमें मध्यप्रदेश के बस्तर जिले के गौंड आदिवासी के जीवन वृत्त का उद्‌घाटन है। यहाँ के आदिवासी समुदाय के शिक्षा के प्रति आस्था है। इनका संपूर्ण जीवन जंगल पर आश्रित है। इस समाज में 'घोंटुल' के प्रति आस्था है। घोंटुल इन जनजातियों का नियामक बिन्दु है। सामाजिक व्यवस्था, नियम, दंडविधान, कामकाज की नीति का संबंध घोंटुल से है। इस उपन्यास में बस्तर के पहाड़ी आंचलिक गढ़बंगाल का जनजीवन यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है। इसमें सुलकसाए और महुआ के कथासूत्र के माध्यम से अंचल का जनजीवन अंकित है। आधुनिक सभ्यता, औद्योगीकरण से दूर, तनावों से मुक्त स्वच्छंद जीवन जीनेवाला गौंड यहाँ है। जंगल पर अधिकार बनाये रखने के लिए अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करनेवाला गुंडाधर, सूलकसाए एवं महुआ अंचल का जड़त्व तोड़कर विद्रोह करते हैं। सामाजिक चेतना के यहाँ दर्शन होते हैं। सरकारी अफसरों की मनमानी का विरोध यहाँ चित्रित है। यह उपन्यास युगीन संदर्भो में चेतना के नवीन दवाब से गुरजते वन्य जीवन को पकड़ने का प्रयत्न करता है। गोंडों की जनजागृति, सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उसकी समस्या,

नारी की स्थिति, प्राकृतिक परिवेश का चित्रण करने में यह रचना सफल रही है।

'शानी' रचित 'शालवनों का द्वीप' अबूझमाड़ पहाड़ी के तराई भाग में अवस्थित अरोसा गाँव के गोडों की जीवनी है। यहाँ के आदिवासी अपनी परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों से चिपके हुए हैं। यहाँ के आदिवासी जनजीवन को रचनाकार यूँ शब्दबद्ध करते हैं - ''हर आँख बीमार और हर दृष्टि बुझी हुई, सब हमजात व कमजात हैं।''[१] अपनी लोक परम्परा के प्रति विश्वास और सरकारी नीतियों का विरोध इस समुदाय की प्रवृत्ति हैं । अन्याय का सामूहिक विरोध करने वाला यह समुदाय समग्रता के साथ शानी के इस उपन्यास में चित्रित हुआ है। शानी ने अबूझमाड़ की १८ महीने यात्रा की। इस क्रम में उन्होंनें वहाँ जो देखा, जिस सत्य का साक्षात्कार किया उसे बड़ी ईमानदारी के साथ अपने उपन्यास में शब्दबद्ध किया। इस उपन्यास में रचनाकार 'स्वयं' उपन्यास का पात्र है, जिससे कथा के विस्तार की और भी अधिक प्रामाणिकता प्राप्त हुई है। उनका अध्ययन और निरीक्षण उपन्यास के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।''[२]

१९८० ई० में प्रकाशित राकेश वत्स का उपन्यास 'जंगल के आसपास' भी आदिवासियों की विषम परिस्थितियों में जीजिशिशा को उद्घाटित करनेवाला उपन्यास है। इसी प्रकार १९८१ ई० में प्रकाशित 'जाने कितनी आँखें' राजेन्द्र अवस्थी का आदिवासी जीवन पर आधारित दूसरा उपन्यास है। इसमें बुंदेलखंड के बीजडंडी गाँव की सुवेगा की कहानी है। इस उपन्यास में अंतरजातीय विवाह, पुनर्विवाह, धर्मांतरण के कारण साम्प्रदायिकता का नया रूप आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसके कुरमी संस्कृति के बदलते स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। डॉ० त्यागी का मानना है कि ''पिछड़े अंचल में चरित्रगत नैतिकता के प्राचीन मानदंडों पर प्रहार करके उपन्यासकार ने नैतिकता के नये जीवनमूल्यों का प्रतिपादन किया है।''[३] इसी प्रकार शानी रचित 'साँप और सीढ़ी'' (१९८१ई०) परम्परागत जीवन पद्धति से चिपके हुए आदिवासी समुदाय का सरकारी विकास योजनाओं के कारण बदलते जीवन-स्तर को उद्घाटित करनेवाला उपन्यास है। 'साँप और सीढ़ी' के कस्तूरी गाँव का हलबा और बुनकार जनजाति विकास की ओर बढ़ रही है। इस उपन्यास में आदिवासी जनसमुदाय में ईसाईयत का प्रवेश और उससे होनेवाले सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का चित्रण हुआ है। हिंदुस्तान के अनेक आदिवासी इलाके में विषमता के वातावरण में जी रहे आदिवासी समूह के बीच ईसाई मिशनारियों ने अपने धर्मानुयायियों की संख्या बढ़ाने का आर्थिक आधार पर प्रत्यन किया है। आदिवासी समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में विमर्श का यह महत्वपूर्ण पहलू है। बस्तर के कस्तूरी सोनपुर गाँव में हलबा आदिवासी का दया पढ़ लिखकर अफसर बनता है। ईसाईकरण से राजीनति बदलती है, खानखादन से विस्थापित मजदूरों का संघर्ष और आधुनिकता के प्रवेश से अवैध संबंधों के बढ़ने का इस उपन्यास में स्वाभाविक चित्रण हुआ है। यहाँ उपन्यासकार ने नये विचारों के साथ बदलती सामाजिक पृष्ठभूमि पर चिंतन किया है।

१९८९ ई० में प्रकाशित डॉ० शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' उपन्यास कबीलाई जीवन पर आधारित रेवतीपुर की कहानी है। जिसमें चालीस एकड़ जमीन के लिए किया गया नटों का संघर्ष है। जमीन पर प्यार करनेवाला लालू नट कहता है -''इसे प्यार करो अपनी माता की तरह, दुलार करो, सम्मान करो।'' वहीं चाची का कथन है -''चाहे कौन सा भी बदलाव आ जाये लेकिन हमें धरती को हमेशा लहराते रखना है। रेवतीपुर में नट आजादी के लिए संघर्ष करते हैं। आठ नट औरतें अनशन पर बैठीं, साठ-सत्तर युवाओं ने जुलूस निकाला, उनका लक्ष्य था -''हम वनाफर हैं, हम मरने-जीने से नहीं डरते, बस एक ही लक्ष्य, आजाद रहना और आजाद घूमना।''[४] इस प्रकार धीरे-धीरे हिंदी उपन्यास की विकास परम्परा में आदिवासियों चित्रण का स्वरूप बदलता जाता है। इसी क्रम में 'वनतरी' १९८६ ई० में प्रकाशित होता है। इसमें उपन्यासकार सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव बिहार के डुमरी गाँव की 'पहारिया आदिवासी' का दस्तावेज प्रस्तुत करते हैं। पहाड़ में रहनेवाला, जंगल पर जीविका चलानेवाला है यह आदिवासी समूह। पहारियों का अप्रगत जीवन एवं प्राकृतिक परिवेश से उनकी आत्मीयता का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। मिथिल वनतरी की कहानी, सुकुल पहारिया का जीवन, जमींदारों-ठेकदारों की शोषण नीति, अफसरों की भ्रष्ट प्रवृत्ति पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। साथ ही, आदिवासियों में शोषण के प्रति जो विद्रोह का भाव है उसे भी रचनाकार ने बड़ी संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है।

१९९० ई० के बाद आदिवासी विमर्श की क्रमिक धारा नये रूप में गति प्राप्त करती है। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श की भाँति आदिवासी समुदाय में भी धीरे-धीरे अपने शोषण और दमन के खिलाफ आक्रोश के भाव जगते हैं और यह समुदाय भी अपने अधिकार के प्रति सजग होता है। हिंदी उन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श नयी दिशा में चल पड़ती है और इसी क्रम में १९९० ई० में संजीव का उपन्यास 'धार' प्रकाशित होता है। झारखंड के संताल परगना के उपेक्षित कोयला खादान में काम करने वाली श्रमजीवी जनजाति संताल, गुलगुलिया, बाहुरी, मोची की कहानी है 'धार'। पूँजीवादी व्यवस्था, ठेकेदारों की मनमानी, अवैध संबंध एवं धंधे, आतंक, लूट, ओझा और सरकारी अफसरों की शोषण नीति से शोषित संतालों की कथा है यह उपन्यास। कोयला खादान देश के विकास में महत्वपूर्ण है, मगर आदिवासियों की जीवन संस्कृति के विनाश का कारण भी है। उपन्यास के प्रारंभ में शोषण का चित्रण हुआ है, किन्तु उत्तरार्द्ध के आदिवासी समुदाय में जाग्रत नयी चेतना का अंकन हुआ है। ''मैना'' इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है जो आदिवासियों की दीन-हीन दशा के बारे में कहती है - ''हमारा अपना कोई ठिकाना नहीं, कोयला खादान पर हम रहता, फिर भी कंगाल।''[५] इसी विषम परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए मैना आदिवासियों के स्वत्व का भाव जगाती है। इस उपन्यास के संजीव में अधिकारबोध, मोर्चाबंदी, कुर्बानी के लिए तैयार एवं अपने स्वत्व के लिए संघर्षरत आदिवासी की धार को नयी चेतना प्रदान की है। श्रमिक वर्ग संगठन के बल पर अन्याय के खिलाफ संघर्ष करें एवं अधिकार प्राप्ति हेतु अपनी लड़ाई की धार को तेज करे - यहाँ उपन्यासकार ने यही संदेश दिया है। आदिवासी जीवन की विभिन्न स्थितियों के चित्रण के क्रम में संजीव का दूसरा उपन्यास 'पाँव तले की दूब' १९९५ ई० में प्रकाशित होता है। इस उपन्यास की

कथा वस्तु भी झारखंड के आदिवासियों से संबंधित है। इस उपन्यास में कारखानों के विकास के कारण आदिवासी समुदाय की विस्थापन की एक नयी समस्या का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। साथ ही सुदीप्त जैसे पात्रों के माध्यम से रचनाकार के माध्यम से आदिवासी की स्थिति पर यहाँ नायक कहता है - ''आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसें है - अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सव-धार्मिता कंगाल बनाती है।''[६] पुन: उपन्यासकार संजीव 'जंगल जहाँ शुरू होता है'' (२००० ई०) में आदिवासी समुदाय की एक नयी समस्या का चित्रण करते हैं। इस उपन्यास मे चम्पारण की थारू जनजाति की कहानी है। लोकतंत्र, विकासोन्मुखी व्यवस्था के नाम पर स्वच्छंदी आदिमों का होनेवाला शोषण यहाँ चित्रित है। इसका आधार परिवेश प्रकृति है। यहाँ उपन्यासकार ''मानव और प्रकृति का अंतर्संबंध तथा समाजशास्त्रीय दृष्टि से जटिल विधान का संधान करता है।''[७] भ्रष्ट पुलिस राजनेता से मिलकर जातिवाद के आधार पर आदिवासियों का शोषण करती है। नेता डाकू से मिले तो सफलता कैसे मिलेगी? डाकू परशुराम के नाम पर एक लाख रूपये का ईनाम है मगर वह चुनाव जीतकर जनसेवक बनता है, तो काली सामाजिक अपमान से डाकू बनने को विवश होता है। यह उपन्यास सिमटती राजनीति और पनपते नक्सलवाद को उद्घाटित करता है।

आदिवासी जनजीवन के चित्रण के क्रम में रांगेय राघव रचित, 'कबतक पुकारूँ' उपन्यास 'करनटों' की जीवनगाथा है। इस बृहत् उपन्यास के रचनाकार ने राजस्थान ब्रज प्रदेश की सीमा पर बसे बैर नामक गाँव की जयराम पेशा नटों की सांस्कृतिक विरासत पर प्रकाश डाला है। राघव जी के उनकी जनसंस्कृति को 'प्यारी-सुखराम' की प्रेम कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। किन्तु यहाँ उनकी विद्रोही चेतना को कम उनकी समझौतावादी दृष्टि को अधिक व्यक्त किया गया है। कहीं-कहीं संघर्ष का संकेत अवश्य है। जब पुलिस द्वारा चमारों-नटों की पिटाई होती है तब सुखराम कहता है - ''रोना नहीं लड़ो, हम नट हैं। चोर नहीं। धरती कभी रोती नहीं, जब वह क्रोधित होती है तब भूचाल होता है।''[८] संघर्ष का बीज रूप बाद के उपन्यासों में आदिवासी विमर्श को नयी दिशा देता है। इसी प्रकार 'एकलव्य' (१९९७) उपन्यास के उपन्यासकार चन्द्रमोहन ने महाभारत की कथावस्तु के माध्यम से विषम परिस्थितियों में होने के बावजूद उसके आत्मबल एवं दक्षता को चित्रित किया है। अपनी जाति के विकास के लिए ज्ञान का प्रयोग करने की इच्छा रखनेवाला एकलव्य आज के आदिवासी, दलित नेता के लिए आदर्श हैं। उपन्यास के एकलव्य का यह कथन - ''मैं उस सामर्थ्य का उपयोग निषाद और अन्य दलित वर्णों के उत्थान हेतु करना चाहता हूँ।''[९] आदिवासी समुदाय में नयी चेतना का विकास करने में समर्थ हैं।

आदिवासी जीवन गाथा को चित्रित करने वाले उपन्यासकारों की श्रेणी में महाश्वेता देवी का नाम भी अग्रगण्य है। १९९८ ई० में प्रकाशित उनका 'भूख' उपन्यास आदिवासी जीवनगाथा को चित्रित करता है। इस उपन्यास में आदिवासी जंगल पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उनकी 'भूक्ष' अधिकार की रक्षा की भूख है। इस उपन्यास में 'कुँवर सिंह शोषण' का, कोसिला नारी चेतना का एवं 'कुनारी' नारी शोषण का प्रतीक पात्र है। 'खेड़ी बाँध परियोजना के कारण उजड़ते जनसमुदाय एवं इससे उपजी संघर्ष की गाथा को महाश्वेता देवी ने यथार्थ की भावभूमि पर चित्रित किया है। लेकिन महाश्वेता देवी की यह चेतना यहाँ विश्राम नहीं लेती, बल्कि २००८ में प्रकाशित 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में एक नये विमर्श के साथ व्यक्त होती है। साहित्य अकादमी, मैग्सैसे अवार्ड, भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित यह उपन्यास बुद्धिजीवियों को आदिवासी समुदाय के संदर्भ में नये परिप्रेक्ष्य में सोचने पर विवश करता है। छोटानागपुर के मुंडा द्वारा जंगल अधिकार के लिए किये गये सशस्त्र क्रांति की महागाथा है - जंगल के दावेदार । सशस्त्र विदोह, मानवीय मूल्यों की कथा, क्रांति का प्रतीक भगवान बीरसा मुंडा के पराक्रम की गाथा है यह उपन्यास। बीरसा मुंडा आदिवासी क्रांतिकारिता के राष्ट्रीय प्रतीक हैं। आज जरूरत है बीरसा के बिस्तार की। बीरसा एक तरफ स्वच्छ पानी पीने का, बासी अनाज न खाने का, मन का अंधेरा हटाने का, बलि न देने का संदेश देता है तो दूसरी तरफ आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचार और शोषण के खिलाफ उसे विद्रोह करने को जाग्रत भी करता है। यहाँ स्पष्ट है कि बीरसा मुंडा नये विचारों का, आदिवासियों के विकास, अधिकार राज का सपना लेकर संघर्ष करने वाला नायक है। शिक्षा, स्वच्छता का उद्घोष करनेवाला, बलिप्रथा का विरोध करनेवाला आदर्श पात्र है। जंगल का दावेदार अंतत: आदिम ही है -यही इस उपन्यास का संदेश है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि १९६० ई० के बाद हिंदी उपन्यास में आदिवासी जीवन का जो बीज बोया गया था वह आज एक वृक्ष बन गया है और जीवन की विद्रूपता से बाहर निकलकर अन्याय और अत्याचार के झंझावातों से लड़ते हुए वह वृक्ष अपनी टहनियों को मजबूत एवं पत्तियों को सघन बना रहा है। उसकी सघनता की छाया में आदिवासी विमर्श फूल-फल रहा है। यह सत्य है कि उसे अभी बहुत विकास पाना है, किन्तु तथाकथित सभ्य और विकसित माननेवाली समाज एवं संवेदनशीलता के पर्याय साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों को उसने नये परिप्रेक्ष्य में सोचने को विवश किया है।

संदर्भ सूची :

१. शानी -''शालवनों का द्वीप' - १९६७, राजकमल प्रकाशन, पृ० सं०- ६१
२. डॉ० इन्द्रप्रकाश पांडेय - 'हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य'।
३. डॉ० सुमित्रा त्यागी- हिंदी उपन्यास आधुनिक विचारधारा, पृ०- २०१
४. डॉ० शिवप्रसाद सिंह -शैलूष- १९८९, नेशनल पब्लिसिंग टाबुल, दिल्ली, पृ० सं०-७६
५. संजीव-धर-१९९०, राधाकृष्ण प्रकाश, दिल्ली, पृ० सं० ५७
६. डॉ० कुसुम शर्मा - साढ़ोत्तरी हिंदी उपन्यास, विविध प्रयोग, पृ० सं०-२००
७. रांगेय राघव - कब तक पुकारूँ - १९९१, राजपाल एण्ड सं, पृ० सं०- ३९४
८. चन्द्रमोहन प्रधान -एकलव्य -१९९७, अनुराग प्रकाशन, पृ० सं०- २४